R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-1 जनवरी 2021 (1)

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

जनवरी का E - अंक

← कहानगुरु : जीवन-दर्शन

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और उनके जीवन से सम्बन्धित १० प्रमुख घटनाएँ हैं - १. जन्मधाम उमराला, २. धूड़ी में लौकिक शिक्षा, ३. पालेज में अनाज की दुकान, ४. पालेज में धार्मिक नाटक देखकर वैराग्य, ५. हाथी पर बैठकर स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षा, ६. दिगम्बर धर्म की स्वीकृति, सम्प्रदाय-त्याग एवं श्री कुन्दकुन्दाचार्य के प्रति भक्तिभाव, ७. सोनगढ़ में स्वाध्यायमन्दिर का निर्माण, ८. उत्तर एवं दक्षिण भारत की यात्राएँ, ९. पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावनायोग से ६६ जिनमन्दिर, वेदी प्रतिष्ठाएँ एवं पञ्चकल्याणक महोत्सव, १०. पूज्य गुरुदेवश्री की अमृतवाणी के प्रभाव से सारे विश्व में जिनधर्म की प्रभावना तथा सोनगढ़ में श्री सीमन्धरस्वामी जिनमन्दिर, परमागममन्दिर एवं नन्दीश्वरमन्दिर की स्थापना।

अहो! भक्त चिदात्म के!! सीमन्धर-वीर-कुन्द के!!!

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के

दसवें वार्षिकोत्सव की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-1 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2077) जनवरी 2021

कर लो जिनवर का गुणगान.....

कर लो जिनवर का गुणगान, आई सुखद घ़डी।
आई सफल घड़ी, देखो मङ्गल घड़ी ॥ करलो..... ।टेक ॥

वीतराग का दर्शन-पूजन भव-भव को सुखकारी।
जिन प्रतिमा की प्यारी छवि लख मैं जाऊँ बलिहारी ॥1 ॥

तीर्थङ्कर सर्वज्ञ हितंकर महामोक्ष के दाता।
जो भी शरण आपकी आता तुम सम ही बन जाता ॥2 ॥

प्रभु दर्शन से आर्त रौद्र परिणाम नाश हो जाते।
धर्मध्यान में मन लगता है शुक्ल ध्यान भी पाते ॥3 ॥

सम्यग्दर्शन हो जाता है मिथ्यातम मिट जाता।
रत्नत्रय की दिव्य शक्ति से कर्म नाश हो जाता ॥4 ॥

निज स्वरूप का दर्शन होता निज की महिमा आती।
निज स्वभाव साधन के द्वारा सिद्ध स्वगति मिल जाती ॥5 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती ओखीबाई
धर्मपत्नी
श्री जसराजजी बागरेचा
हस्ते
श्री अशोककुमार जैन बागरेचा
बैंगलोर - 560019

क्या - कहाँ

द्रव्यलिंग का स्वरूप.... 5
चिदानन्द भगवान की स्तुति.... 13
शुद्धात्मा का ध्यान ही धर्म,.... 21
प्रेरक-प्रसंग.... 26
आचार्यदेव परिचय शृंखला.... 28
जिस प्रकार - उसी प्रकार.... 30
एक निवेदन.... 31
समाचार-दर्शन 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

बहिनश्री के वचनामृत क्रमांक 199 पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

द्रव्यलिंग का स्वरूप

जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं, उन सबमें से विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही। अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिए तू भी ऐसा कर।

अनन्त-अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न? अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होने का एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है, शुभ भाव की मिठास में रुक जाता है, 'यह राग की मन्दता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्ष का मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है; परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है उसे क्यों नहीं देखता? अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है'—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है, ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है, (दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे। द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं ॥१९९॥

१९९, **जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं,...** अटकने के अनेक प्रकार हैं। पर का करूँ, पर मेरी चीज़ है, पर से मुझे लाभ होता है, राग से मुझे लाभ होता है – ऐसे अटकने के, रुकने के, मिथ्यात्व के अनेक प्रकार हैं। आहा..हा..! मिथ्यात्व के भी स्थूलरूप से असंख्य प्रकार हैं। सूक्ष्मरूप से मिथ्यात्व के अनन्त प्रकार हैं। यह बन्ध अधिकार में लिया है। समयसार। मैं पर को जिलाता हूँ, पर को मार सकता हूँ, यह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का एक भाग है – ऐसा वहाँ लिखा है। वहाँ पूरा मिथ्यात्व नहीं आया, वहाँ लिखा है। एक मिथ्यात्व का यह भाग है कि मैं पर को जिला सकता हूँ, मैं पर को सुविधा दे सकता हूँ, मैं पर को सुखी कर सकता हूँ, पर को मैं मोक्ष करा सकता हूँ, यह भी मिथ्यात्व का एक भाग ऐसा है। समझ में आया? मिथ्यात्व के तो असंख्य प्रकार हैं। उसमें से यह एक मिथ्यात्व का भाग है। रतनचन्दजी! आहा..हा..!

आज आया है। जैनपथप्रदर्शक में लिखाओ, आत्मधर्म में लिखाओ, ऐसे भावलिंगी साधु होते हैं, द्रव्यलिंगी ऐसे होते हैं। द्रव्यलिंगी चाहे जो हो, सात गुण भले हो, अट्ठाईस में से सात हो तो भी अपने को वन्दनीय है – ऐसा लिखा है। नाम नहीं दिया। पत्र आते हैं, कोई लिखते हैं बेचारे। अट्ठाईस मूलगुण में से सात गुण हो तो भी अपने से तो अधिक हैं। यहाँ तो कहते हैं अट्ठाईस मूलगुण में से एक गुण तोड़े तो उसके पास अट्ठाईस भी नहीं हैं। कोई पत्र आया है, बड़ा लम्बा आया है। पत्र आया है। आता है, लोग लिखते हैं। तुम यदि वर्तमान मुनि को मानो और वन्दन करो तो लोग तुम्हें करोड़ों रुपये देंगे, तुम्हारी कीर्ति बहुत बढ़ जायेगी। रुपये आवें या न आवें, यहाँ कहाँ हमारे पड़ी है? हम किसी को कहते नहीं कि तुम रुपये दो। यहाँ तो करोड़पति आते हैं। एक पाई दो, सौ दो, पचास दो, हमने तो किसी को कभी कहा नहीं? आहा..हा..! समझ में आया? तो भी कहा नहीं? एक सेठ आये थे। दस मिनिट बैठे थे। अन्दर मेरे कमरे में (बैठे थे)। पैसे नीचे रखे। मैंने कहा कितने हैं यह? बोले नहीं। देखा तो पचास हजार। दस-दस हजार के

पाँच नोट। अरे! यह तो हम रखते नहीं, एक पाई भी (रखते नहीं) हमने तो रामजीभाई को दे दिये। पाँच मिनिट में पचास हजार। ऐसे दस-दस हजार तो बहुत आते हैं। अपने अनुसूया बहिन, आनन्दभाई की बहिन (के) घर में एक दिन रहे थे तो दस हजार दिये थे। मुम्बई में एक दिन रहे थे। दस हजार (रखे)। हम किसी का लेते नहीं और देते नहीं।

इन हीराभाई की दुकान में आसाम गये थे। आसाम... आसाम ये भाई हैं न? हीरालाल काला सामने बैठे हैं, वहाँ इनकी दुकान है। दस मिनिट गये तो काजू और द्राक्ष सबको बाँटे और दस हजार दिये। मैंने पूछा - किसके हैं? बोले नहीं। दुकान के हैं, दुकान के हैं। दस मिनिट के दस हजार। हीरालाल, भावनगर के बड़े गृहस्थ हैं, बहुत उदार हैं और नरम व्यक्ति है तथा वहाँ अपने कलकत्ता में मिश्रीलालजी के पास पच्चीस-तीस करोड़ हैं न? कलकत्ता में थे न? कौन से वर्ष? १९८४। जैनतिथि, दूज के पहले एकम के दिन आये मिश्रीलालजी गंगवाल। दस हजार के नोट लेकर आये। कल जयन्ती है तो मैं दस हजार देता हूँ। यह तो पुण्य का फल जगत में आता है, उसमें आत्मा को क्या? आहा..! भिखारी ऐसा मानता है कि मुझे पैसा मिला। भिखारी है, रंक है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वरांका लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वरांका लिखा है, वरांका लिखा है। सिद्धान्त में कलश में वरांका (लिखा है)। बड़ा राजा है, करोड़ की आमदनी है, सब भिखारी है। अपनी लक्ष्मी की खबर नहीं और दुनिया की जड़ की लक्ष्मी मेरी, भिखारी! भीख माँगता है कि मुझे पैसा दो और स्त्री दो और लड़का दो, इज्जत दो। भिखारी है।

मुमुक्षु : सेठियों को भिखारी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया किसे कहना? सेठिया बैठा, वह हेठिया है। आहा..हा..! यहाँ तो कृष्णकुमार दरबार भी आये थे। भावनगर दरबार। मानस्तम्भ (प्रतिष्ठा) में आये थे। दो-तीन बार आये थे। करोड़ की आमदनी

है। मैंने तो कहा था, राजन! एक महीने में पाँच लाख माँगे, लाख माँगे, वह छोटा भिखारी है और करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी है। हमें कहाँ उससे पैसे लेने थे? दरबार आये थे। तथापि उसने स्वीकार किया - महाराज! नरम व्यक्ति थे। कृष्णकुमार थे, गुजर गये। भावनगर दरबार थे। उसमें क्या आया? तेरा करोड़ क्या, अरब रुपये हों तो क्या? वह तो धूल है। अनन्त लक्ष्मी भगवान आत्मा में पड़ी है, उसकी तो तुझे कीमत नहीं। आहा..हा..!

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन... प्रभु! क्या कहें? इन अनन्त गुण की संख्या का अन्त नहीं। क्या है यह? अन्दर इतने गुण हैं कि एक, दो, तीन करते-करते अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. (करो उसमें) यह अन्तिम गुण है - ऐसा उसमें नहीं है। यह क्या वस्तु है, समझ में आया? इतनी अनन्त संख्या आत्मा में पड़ी है कि यह अनन्त का अन्तिम धर्म है, अन्तिम है - ऐसा कुछ है नहीं। क्या कहते हैं यह? अनन्त.. अनन्त.. को अनन्त.. अनन्त.. गुणा करके अनन्त की अन्तिम दशा यह गुण है - ऐसा आत्मा में नहीं है। आहा..हा..! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण से विराजमान प्रभु, जिसका अन्त नहीं, संख्या का अन्त नहीं। क्या है यह? यह क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? है तो इतने क्षेत्र में। शरीरप्रमाण आत्मा भगवान है अन्दर, परन्तु उसके गुण की संख्या अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को अनन्त गुणा गुणित करो तो भी अनन्त वर्ग करो तो भी यह अन्तिम गुण है - ऐसा कभी नहीं होता। यह क्या चीज़ है? भाई! प्रभु! तूने तेरी वस्तु, तेरी लक्ष्मी अनन्त-अनन्त पड़ी है, तुझे खबर नहीं है। आहा..हा..!

यह यहाँ कहते हैं, जीव को अपने में आने का (प्रकार) एक ही है। और अटकने के अनेक हैं। समझ में आया? **उन सबमें से विमुख हो...** आहा..हा..! कोई राग का कर्ता और कोई पुण्य का कर्ता और कोई अपने बोलने की क्रिया लोगों में ठीक पड़े, उसमें प्रसन्नपने का कर्ता (होता है)। सब मिथ्यात्वभाव है। आहा..हा..! अटकने के बहुत स्थान हैं।

मुमुक्षु : सब झूठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठी तो पर्याय झूठी है। द्रव्य तो सत्साहेब बड़ा पड़ा है। आहा..हा..! यह तो पहले कहा न! द्रव्यस्वभाव उछलकर कभी विकार में नहीं आता। आहा..हा..! भाई! यह तो धर्म कथा है। धर्म कथा में वीतरागता उत्पन्न हो, वह धर्म कथा है। जो राग से लाभ कहे, वह धर्म कथा नहीं, वह तो पाप कथा, विकथा है। आहा..हा..! अपने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त (गुण हैं)। क्या है यह? जैसे क्षेत्र का अन्त नहीं, तो है क्या? आहा..हा..!

एक आत्मा में क्या, एक परमाणु में लो न! जितने गुण एक आकाश में है, उतने गुण एक परमाणु में है। आकाश के एक अस्तित्वगुण की चौड़ाई अमाप.. अमाप.. अमाप है और परमाणु में अस्तित्वगुण इतने में है। क्या है यह? समझ में आया? और एक परमाणु में भी आकाश के प्रदेश से अनन्तगुने गुण हैं। भगवान आत्मा में भी अनन्तगुने गुण हैं, जिनका अन्त नहीं कि यह अन्तिम गुण है। ऐसा प्रभु! वह परमाणु जड़ेश्वर है। जड़ेश्वर है-जड़ का स्वयं ईश्वर है। आहा..हा..! उसमें जड़ के अनन्त गुण कितने हैं? कि यह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. में परमाणु में यह अन्तिम गुण है, ऐसा नहीं। यह क्या है? आहा..हा..! गजब बात है, प्रभु! क्या कहें? कभी विचार में आया नहीं, विचार में लिया नहीं और जगत के व्यर्थ विचार में पूरे दिन मर गया, उसमें और उसमें.. आहा..हा..! क्या है यह?

भगवान ने कहा है, प्रभु! तुझमें इतने गुण हैं कि अनन्त-अनन्त संख्या करो, जैसे एक पाँच को पाँच बार गुणा करो तो पाँच को पाँच द्वारा गुणा करने पर पहले पच्चीस हुए। फिर पच्चीस को पाँच से गुणा करो, ऐसे पाँच बार गुणा करो तो वह उसका वर्ग कहलाता है। इसी प्रकार एक अनन्त को इतनी संख्या को एक बार अनन्त से गुणा करो, उसकी संख्या आवे उसे दूसरी बार, ऐसे अनन्त बार गुणा करो। आहा..हा..! अनन्त गुण इतने हैं। अनन्त को अनन्त बार गुणा करो, एक बार गुणा किया, अनन्ती संख्या, फिर दूसरी संख्या आयी, उसे उससे गुणा करो, ऐसे अनन्त बार गुणा करो। वकील!

तुम्हारे कानून में ऐसा कभी नहीं आया होगा। आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुण का नाथ प्रभु, भगवान तेरी वस्तु है। आहा..हा..! तुझे तेरी कीमत नहीं और तेरी वस्तु में नहीं, उसकी तुझे कीमत और महिमा आयी है, वह भ्रमणा है। आहा..हा..!

द्रव्यलिंगी साधु हुआ, वह यहाँ आगे कहेंगे। **जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है,...** आहा..हा..! इस शुभराग की क्रिया की मिठास में अटक जाता है परन्तु अनन्त-अनन्त गुण की संख्या का पार नहीं, अन्त नहीं,—ऐसे भगवान के प्रति प्रेम नहीं करता, उसकी ओर नजर नहीं करता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसकी ओर नजर करने पर कितने प्रकार के मिथ्यात्व टूट जाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में मिथ्यात्व टूट जाता है।

मुमुक्षु : कितने प्रकार के मिथ्यात्व ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहाँ अन्तर्दृष्टि हुई, ज्ञान समयान्तर में सम्यग्ज्ञान हो जाता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो ज्ञान समयान्तर में सम्यग्ज्ञान हो जाता है। आहा..हा..! यह तो बताया न ? १९१ कलश, प्रज्ञाछैनी। यह सब इतना-इतना कहा परन्तु होगा कितने समय में ? राग से ऐसा है और अनन्त गुण हैं और अमुक है। तो कहा, 'रभसा' 'रभसा' का अर्थ शीघ्र किया और 'रभसा' का अर्थ एक समय किया। एक समय में। भगवान भूल में है तो एक समय में भूल तोड़कर भगवान हो जाता है। आहा..हा..! पहले आ गया है। ज्ञाता के अभ्यास से ज्ञाता हो जाता है। आहा..हा..! कोई व्यवहार क्रिया, दान, दया, और मन्दिर बनाया और मन्दिर में बहुत पूजा की, इसलिए ज्ञातापने का भान हो जायेगा (-ऐसा नहीं है)। आहा..हा..! ऐसी वस्तु है। दुनिया को कठिन पड़े, इसलिए फिर लोग विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में नहीं जँचता, इसलिए विरोध करते हैं। उसमें कुछ नहीं। करे, ऐसा है। ऐसी चीज़ है। आहा..हा..!

एक परमाणु की सत्ता इतने में। आकाश की सत्ता अमाप.. अमाप की सत्ता इतनी चौड़ी तो भी सत्ता जो है, वह एक ही है। आत्मा में सत्ता नाम का गुण है, वह असंख्य प्रदेश में है और आकाश का सत्ता गुण है, वह अनन्त प्रदेश में व्यापक है। क्या है यह ? और परमाणु में सत्ता गुण एक प्रदेश परमाणु है, उतने में है। आहा..हा..! वहाँ क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं, उसकी शक्ति की महत्ता की आवश्यकता है। ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है, उसे राग से भिन्न करके, सन्धि तोड़ दे। सन्धि है, उसको ज्ञान में लेकर पृथक् कर दे। आहा..हा..! अटकने के अनेक प्रकार हैं। है ? **चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे;...** आहा..हा..! सबसे विमुख होकर, स्वभावसन्मुख होकर; भेद, विशेष, निमित्त, राग और संयोग सबसे विमुख होकर.. अनादि से परसन्मुख है, उन सबसे विमुख होकर... आहा..हा..! तेरा मुख पलट दे। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! न पकड़ में आये, न जँचे, उसे ऐसा लगता है यह तो अकेली निश्चय की बातें करते हैं। ऐसे करने से कुछ होता है, व्यवहार करने से (होता है), यह बात ही नहीं करते, बापू! भाई! वह व्यवहार राग है। राग की सीमा है। राग की सीमा है। सीमा अर्थात् विकृतभाव की हद है और अविकृत स्वभाव की हद नहीं, अपरिमित स्वभाव है। परिमित सीमावाली वस्तु है, उसे छोड़ा जा सकता है परन्तु असीम वस्तु है, उसे नहीं छोड़ा जा सकता। तेरी मान्यता भले हो, परन्तु वह वस्तु अन्दर से छूट नहीं सकती। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..! बहुत कठिन काम। वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! भगवान कहते हैं, इसलिए ऐसी वस्तु है – ऐसा नहीं है। परन्तु वस्तु ऐसी है – ऐसा भगवान ने जाना और कहा है। आहा..हा..!

अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. क्षेत्र को भी ज्ञान की पर्याय जान लेती है। जान लेती है, इसलिए वहाँ अनन्त का अन्त आ गया है – ऐसा नहीं

है। अर्थात् एक आत्मा में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण हैं। उन्हें भगवान ने जान लिया; इसलिए वहाँ अन्त आ गया – ऐसा नहीं है। जुगलजी! ऐसी बात है, बापू! क्या हो? भाई! अरे रे! परम सत्य सुनने को नहीं मिलता, वह कहाँ विचार करे और कहाँ जाये? किस ओर जाये? आहा..हा..!

यह यहाँ बहिन कहती है, **चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही।** आहा..हा..! प्रभुत्व की प्रभुता तुझे बैठे तो प्रभुता गुप्त नहीं रह सकती। तुझे प्रभुता की प्रभुता रुचे तो, वह प्रभुता गुप्त नहीं रह सकती। दर्शन में प्रसिद्धि में आ जाती है। आहा..हा..! समझ में आया? वहाँ अमेरिका-फमेरिका में यह सब कुछ नहीं है। आहा..हा..! और यह अवसर आया, भाई! यह करनेयोग्य है। आहा..हा..! **चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही।** होगी ही। प्रभुता की प्रभुता तुझे रुचे और पर्याय में प्रभुता प्रगट न हो – ऐसा नहीं बनता। समझ में आया? ऐसी बात है।

अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है,.. अनन्त जीवों ने ऐसा पुरुषार्थ किया है, तू अकेला नया नहीं है। आहा..हा..! राग की जेल में से निकलकर अनन्त-अनन्त जीव चैतन्य दरबार में घुस गये। **इसलिए तू भी ऐसा कर।** अनन्त जीवों ने ऐसा किया है, वैसा तू भी कर।

मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी जीव राशि की विपरीत श्रद्धा

''(राग जन्मनि कहतां) रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणतिरूप परिणवै छै जीवद्रव्य तिहि विषै, (परद्रव्यं कहतां) आठ कर्म शरीरादि नोकर्म तथा बाह्य सामग्री, (निमित्ततां कलयंति कहतां) पुद्गलद्रव्य को निमित्त पाया जीव रागादि अशुद्ध परिणवै छे – इसो श्रद्धान करै छै जे कोई जीवराशि ते मिथ्यादृष्टि छे, अनंतसंसारी छै।' – समयसार कलश, टीका, पृ. 258-9

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

चिदानन्द भगवान की स्तुति

श्री नाटक समयसार ग्रन्थ का यह प्रथम 'जीवद्वार' अधिकार प्रारम्भ होता है। उसमें सर्वप्रथम मांगलिक रूप से चिदानन्द भगवान की स्तुति करते हैं। वैसे तो यह अमृतचन्द्राचार्य के कलशों का भावार्थ ही है।

चिदानन्द भगवान की स्तुति

शोभित निज अनुभूति जुत चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान॥1॥

अर्थः- वह चिदानन्द प्रभु अपने स्वानुभव से सुशोभित है। सब पदार्थों में सारभूत आत्मपदार्थ है और सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता है॥1॥

काव्य - 1 पर प्रवचन

भगवान आत्मा कैसा है? कि निज अनुभूति से सुशोभित है। अपनी अनुभूति से अनन्त ज्ञान-आनन्द स्वरूप भगवान आत्मा प्रकाशमान होता है। पुण्य-पाप, विकल्प या निमित्त से आत्मा प्रसिद्धि में नहीं आता। ऐसे आत्मा को मंगलाचरण में नमस्कार करते हैं।

आज से लगभग नौ सौ वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य हो गये हैं। उन्होंने श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव रचित समयसार की बहुत ही गूढ़-गंभीर टीका रची है, मानो अध्यात्म-मन्दिर पर कलश जैसी टीका बनाई है। उसका मांगलिक भी देखो न कैसा है!

भगवान आत्मा शरीर और कर्म से तो रहित है ही, किन्तु पुण्य-पाप के विकार से भी रहित है। ऐसा आत्मा, वह समयसार है और वह स्वसंवेदन से प्रकाशित होता है। पुण्य-पाप के रागस्वभाव से अनुसरना, यह तो अनादि से चला आता है, किन्तु यह तो अज्ञान है। अब अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में एकाग्र होकर उसे अनुसरना, वह सम्यग्ज्ञान है। अहो ! ज्ञान-आनन्द की अनुभूति से आत्मा प्रकाशित होता है; शोभित होता है, उसका नाम धर्म है। सारा कथन अस्ति से है।

सम+अय+सार= शरीर, कर्म और पुण्य-पाप के राग से रहित जो सारभूत अपना चिदानन्द आत्मा है, वह अपनी आनन्द की अनुभूति से सुशोभित होता है, प्रकाशित होता है। इसप्रकार प्रथम धर्म की शुरूआत होती है। स्वानुभूति से प्रकाशित हो- ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है। अत: कहा कि "स्वानुभूत्या चकासते" अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। उसमें छठवें बोल में यह बात है कि 'आत्मा अपने स्वभाव से स्वयं प्रकाशमान प्रत्यक्ष ज्ञाता है'। बहुत सूक्ष्म बात है ! जैनदर्शन ही सूक्ष्म है ! अरे, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है! रागरहित वीतराग निर्विकल्प वस्तु को ही जैनपना अथवा आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा की प्रतीति स्वसंवेदन में ही होती है और तभी आत्मा की यथार्थ श्रद्धा होती है।

यह 'शोभित निज अनुभूति' का अर्थ चलता है। पुस्तक सामने रखकर देखो! व्यापार के बही-खाते तो बहुत देखते हो, अब ये चोपड़े (बही-खाते) देखो। दो हजार वर्ष पूर्व भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हो गये हैं। वे साक्षात् सीमन्धर भगवान के पास महाविदेहक्षेत्र में गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे और भगवान की वाणी सुनी थी। उन कुन्दकुन्दाचार्य ने यह शास्त्र रचा है और उस पर नौ सौ वर्ष पूर्व हुए वनवासी दिगम्बर संत अमृतचन्द्राचार्य ने टीका रची है। उसके मंगलाचरण का यह कलश है। उसका अर्थ चलता है। 'नम: समयसाराय' यह महामांगलिक है। उसमें कहते हैं कि अपने आनन्द का अनुभव करने से आत्मा को धर्म होता है, उससे आत्मा शोभित है, राग और पुण्य-पाप के अनुभव से तो आत्मा अशोभित है।

यह मार्ग अलौकिक है भगवान! कोई जुदी ही जाति का मार्ग है। लोग इस मार्ग को जानते नहीं और सेवा-पूजा में ही धर्म मानकर अटक गये हैं। अनादिकाल से शुभाशुभ राग के वेदन में उस तरफ के झुकाव के कारण मिथ्यात्व के वेदन में झूलता अज्ञानी चार गति में घूमता है और दु:खी होता है, तो अब उसे धर्म और सुख किस प्रकार हो- उसका यह कथन है।

भगवान आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित है। द्रव्यकर्म

माने ज्ञानावरणादि आठ जड़कर्म, भावकर्म अर्थात् रागादि विकार और नोकर्म माने शरीरादि संयोगी पदार्थ। जो इन तीनों से रहित है, वह समयसार–आत्मा है। अज्ञानी को शुभ–अशुभ राग का वेदन तो अनादि से है, किन्तु वह उसे शोभता नहीं। वह आत्मा का श्रृंगार नहीं। प्रभु! तेरे स्वभाव में तो अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति आदि भरे पड़े हैं। उस तरफ झुकाव करने से पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हो, वह धर्म है। यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा कथित धर्म का स्वरूप है। ऐसा धर्म प्रकट होने में तेरी शोभा है। विकार और चार गति से छूटने की भावना रूप अन्तर्दशा, वह धर्म हैं।

अरिहन्त, सिद्ध आदि पंचपरमेष्ठी तो परद्रव्य हैं। उनका स्वयं को अनुभव नहीं हो सकता। उनकी ओर लक्ष्य जाये; वह तो विकल्प है, राग है। अपनी अनुभूति से स्वयं प्रकट प्रकाशमान होता है। यह तो अभी अनुभूति यानी पर्याय की बात चलती है। पर्याय यानी अवस्था। द्रव्य, गुण त्रिकाल हैं और पर्याय क्षणिक है। उस पर्याय में अनादि से राग, विकल्प और मिथ्यात्व का वेदन है; वह आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा का वेदन है। ज्ञानानन्द स्वभाव के अनुसरण से जो ज्ञान–आनन्द का वेदन पर्याय में आता है उसके द्वारा आत्मा प्रकाशमान होता है। उसके द्वारा आत्मा की यथार्थ प्रतीति होती है।

यह तो वीतराग का कोई अचिन्त्य मार्ग है। बाहर में शरीर की क्रिया की प्रवृत्ति आदि से धर्म मान रहा है। यह तो अनादि से चला आ रहा मिथ्यात्व भाव ही है, नरक और निगोद जाने की खान है। शरीर तो जड़ है और राग होता है, वह भी चेतन नहीं है। नव तत्वों में वह आस्रव तत्व है। उससे रहित अपना शुद्ध आत्माद्रव्य स्वभाव है, उसकी अनुभूति करना धर्म है, वही सार है। अनुभूति हुई, वही आत्मा को सच्चा नमस्कार है। वही आत्मा को नम गया। नमन् माने विनय अर्थात् आत्मा का आदर और सत्कार करना, वही आत्मा की अनुभूति है।

यह सूक्ष्म बात है। धर्म सुलभ है, किन्तु साधारण मनुष्य स्थूल रीति से समझ जाये- ऐसा धर्म नहीं, बहुत दुर्लभ है। बहुत अलौकिक बात है, अपूर्व है; क्योंकि अनन्तकाल में एक सैकेण्ड भी ऐसी अनुभूति नहीं हुई। एक-दो सैकेण्ड भी अनुभूति हुई होती तो उसकी मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। दोज उगे और पूर्णिमा न हो- ऐसा कभी नहीं बनता। पूर्णिमा होती है, होती है और होती ही है। वैसे ही एकबार भगवान चैतन्य की तरफ झुकाव होकर आनन्द का अनुभव और सम्यग्ज्ञान की दोज उगी, उसके केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा हुए बिना नहीं रहती; उसे केवलज्ञान अवश्य ही प्राप्त होता है।

भावाय अर्थात् भगवान, जो अपने स्वभाव भाव स्वरूप है, परभाव स्वरूप नहीं; किन्तु अपने भावस्वरूप भगवान है और चित्स्वभावाय अर्थात् ज्ञान और आनन्द, वह आत्मा का स्वभाव है।

दरबार! (एक ग्रामीण मुमुक्षु) यह आत्मा दरबार है। उसमें अनन्तज्ञान, आनन्द आदि साम्राज्य है, उसका तू स्वामी है। तू कल्याण स्वरूप है और कल्याण करनेवाला है, परन्तु उसके भान बिना कल्याण किस प्रकार हो? अज्ञानी अनादि से आत्मा के भान बिना ही बाहर की क्रिया से अपना कल्याण मान रहा है।

भावाय माने द्रव्य और चित्स्वभावाय यह उसका स्वभाव है। जैसे शक्कर का मीठा और श्वेत स्वभाव है, अफीम का कड़वा और काला स्वभाव है; वैसे ही भगवान आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है और अनुभूति उसकी पर्याय है।

सर्वभावान्तरच्छिदे अर्थात् भगवान आत्मा सर्वभावों को जाननेवाला है।

भावार्थ, वह द्रव्य है। चित्स्वभावाय, वह गुण है और स्वानुभूति, वह उसकी निचली दशा की अपूर्ण पर्याय है। उस आनन्दरूप धर्म की पर्याय से सबको जाननेवाला ज्ञान प्रकट होता है। अनुभूति से सर्वज्ञपद प्रकट होता है। किसी राग या निमित्त से सर्वज्ञपद प्रकट नहीं होता, यह यहाँ सिद्ध करना है।

अनुभूति में अपना स्वरूप तो जानने में आया था किन्तु अब अपने से भिन्न सर्व पदार्थों का भी एकसाथ जानना होता है, वह सर्वज्ञदशा अनुभूति से ही प्राप्त होती है। स्वानुभूति, वह धर्म की शुरूआत है, संवर-निर्जरा है और सर्व सर्वभावान्तरच्छिदे अर्थात् मोक्ष, वह पूर्णता है।

इसप्रकार एक कलश में जीवद्रव्य, उसके गुण और संवर, निर्जरा व मोक्ष पर्याय यह सब आ गया। आस्रव-बंध और अजीव, वे जीव में नहीं है; अत: उनकी यहाँ बात ही नही ली है। नास्ति से बात ही नहीं की, मात्र अस्ति ही बतायी है।

देखो ! ऐसा यह समयसार का अलौकिक मांगलिक है। जैसे भैंस के स्तनों का दोहन करने से उसमें भरा हुआ दूध बाहर आता है, वैसे ही अमृतचन्द्राचार्य देव ने (समयसार का) कस-मूलतत्त्व बाहर निकाला है। शास्त्र में जो भाव भरे हैं, उन्हें अमृतचन्द्राचार्य देव बलपूर्वक बाहर लाये हैं, ऐसी यह टीका है।

अब 'सर्वभावान्तरच्छिदे' रूप जो मोक्ष की पर्याय है, उसे प्राप्त हुए सिद्धभगवान की स्तुति बनारसीदासजी करते हैं-

सिद्ध भगवान की स्तुति, जिसमें शुद्ध आत्मा का वर्णन है।

जो अपनी दुति आप विराजत,
है परधान पदारथ नामी।
चेतन अंक सदा निकलंक,
महा सुख सागरकौ विसरामी।
जीव अजीव जिते जगमैं,
तिनकौ गुन ज्ञायक अंतरजामी।
सो सिवरूप बसै सिव थानक,
ताहि विलोकि नमैं सिवगामी ॥2॥

अर्थ:- जो अपने आत्मज्ञान की ज्योति से प्रकाशित हैं, सब पदार्थों में मुख्य हैं, जिनका चैतन्य चिह्न है, जो निर्विकार हैं, बड़े भारी सुखसमुद्र में

आनन्द करते हैं, संसार में जितने चेतन- अचेतन पदार्थ हैं उनके गुणों के ज्ञाता घटपट जानने वाले हैं, वे सिद्ध भगवान मोक्षरूप हैं, मोक्षपुरी के निवासी हैं; उन्हें मोक्षगामी जीव ज्ञानदृष्टि से देखकर नमस्कार करते हैं ॥2 ॥

काव्य - 2 पर प्रवचन

देखो ! 'विलोकि' कहकर सिद्ध का स्वरूप ऐसा है ऐसे भान सहित नमने की बात की है; भान बिना नमें, वह तो 'तूमड़ी के कंकर' जैसा है। तूमड़ी अर्थात् सूखी हुई दूधी, जिसमें बीज अलग पड़ जाते हैं अर्थात् अन्दर बजने लगते हैं, मानो अन्दर पैसे खनकते हो ऐसा लगता है; परन्तु इसे भान नहीं कि ये तो बीज हैं। वैसे ही सिद्ध को नमस्कार करे, किन्तु सिद्ध के स्वरूप की खबर न हो- ऐसों की यहाँ बात नहीं है।

मुमुक्षुः- सिद्ध का स्वरूप समझने की दरकार होनी चाहिए न !

पूज्य गुरुदेवश्रीः- जहाँ रुचि हो, वहाँ दरकार आये बिना नहीं रहती। यह व्यापार-धंधे की दरकार किसने सिखलाई है ?रुचि थी तो दरकार आ गई न ! व्यापार-धंधे में तो दरकार आ गई न ! धंधे की दरकार रखने से पैसा नहीं आता, वह तो पूर्व का पुण्य हो तो आता है। आँख की पलक झपकना- यह भी तुम्हारा कार्य नहीं है। जड़ की पर्याय जड़ से होती है, वह चेतन का काम नहीं है। फिर भी जो यह मानता है कि मैं जड़ का कार्य कर सकता हूँ, कमाई कर सकता हूँ, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

अब यहाँ श्लोक का अर्थ करते हैं-

'जो अपनी दुति' अर्थात् ज्योति से स्वयं प्रकाशित है। सिद्धभगवान अपनी चैतन्य ज्योति से विराजते हैं। सिद्ध भगवान किसी का कुछ कर नहीं देते। किसी का भला-बुरा करना सिद्ध का कार्य नहीं है। 'णमो सिद्धाणं' कहते ही सिद्ध के स्वरूप का भावभासन होना चाहिए। कैसे हैं सिद्ध भगवान ?जिन्हें चैतन्यप्रकाश का पूर्ण नूर प्रकट हो गया है, उन्हें सिद्ध भगवान कहते हैं और ऐसी ही शक्ति इस आत्मा में पड़ी है, उसमें से ही सिद्धपना प्रकट होता है। धर्मी अपने स्वभाव को ऐसा मानता है, यह बात पूर्व

में आ गई है। ''चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्धसमान सदा पद मेरो'' शरीर नहीं, कर्म नहीं, राग नहीं और अल्पज्ञपना भी मेरा स्वरूप नहीं; मैं तो सिद्धसमान हूँ। सूक्ष्म बात है! अपूर्व है! अनन्तकाल में कभी नहीं जानी ऐसी बात है। दया, दान, व्रत, भक्ति तो अनन्तबार किये हैं वह कोई अपूर्व नहीं है।

आत्मा में सदा ही जो सिद्धस्वरूप सत्त्व है उसमें से प्रवाहित होकर पर्याय में सिद्धपना प्रकट होता है। यह तो अन्दर का फोटो खींचने की बात है, किन्तु अरे! 'मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरो'' मैंने अपने स्वरूप को नहीं जानकर महामिथ्यात्व के कारण जो मेरे नहीं हैं –ऐसे शरीर व रागादिक को निज माना है। इस महामोहरूप मिथ्यात्व के कारण ऐसा मान रखा है।

भगवान आत्मा तो चैतन्यज्योत सिद्धसमान होने पर भी मैंने वर्तमान पर्याय में महामिथ्यात्व के कारण विकल्प खड़े करके स्वभाव को घेर डाला है और पर का संग करके महाअज्ञान रूपी अंधकार फैलाया है, किन्तु अब बनारसीदासजी कहते हैं कि 'ज्ञानकला उपजी अब मोंकू, कहूँ गुन नाटक आगम कैरो,' राग और विकल्प से रहित स्वरूप का भान मुझे हो गया है। इससें समयसाररूपी आगम का नाटक कहकर, उसमें मैं उसके (स्वरूप के) गुण कहूँगा, जिसके प्रसाद से मेरा मोक्षमार्ग सधेगा। मोक्षमार्ग की साधना पुण्य से नहीं होती। तारणस्वामी ने एक स्थान पर कहा है कि यदि तू जनरंजन कराने के लिए पुण्य से धर्म होने का उपदेश देता है तो तू नरकगामी है। विपरीत मार्ग बताकर दुनिया को राजी रखता है, उसे नरक के सिवाय अन्य क्या हो?मोक्षमार्ग की साधना तो अपने आनन्द स्वरूप को साधते-साधते होती है।

"जासु प्रसाद सधै शिवमारग बेग मिटे घटवास बसेरो।"

अहो! यह देह तो हड्डी और चमड़ी से निर्मित है, मिट्टी है; इसमें आत्मा का बसना यह तो कलंक है। मोक्ष को साधने से इस कलंकरूप देह में बसना शीघ्र छूट जाता है, भव का वास छूट जाता है, शीघ्र छूट जाता है।

पहले यह सब ज्ञान में लेने की बात है। समझे तो फिर प्रयोग कर सकता है। बिना समझे कहाँ पुरुषार्थ करेगा ?कहाँ जाना है और कहाँ से हटना है- इसका पता न हो तो कहाँ जाए ?

यहाँ सिद्ध की स्तुति करते हुए कहते हैं कि सिद्धभगवान अपनी आत्मज्योति से प्रकाशित हैं, सर्व पदार्थों में प्रधान हैं अग्रसर हैं। चेतन जिनका लक्षण यानी चिह्न है, जानना-देखना यह उनका ट्रेडमार्क है। पुण्य-पाप का विकल्प, वह उनका लक्षण नहीं। प्रभु तो निर्विकार हैं, वैसे ही यह आत्मा भी वस्तुरूप से त्रिकाल निर्विकार है और निष्कलंक है।

सिद्धभगवान महासुखसागर में आनन्द करते हैं। कोई प्रश्न करता था कि महाराज! सिद्धभगवान किसी का काम करते हैं या नहीं ?हम तो जो पाँच-पच्चीस मनुष्यों का काम करे, उन्हें बड़ा मानते हैं। (उत्तर दिया) भाई! सिद्धभगवान किसी का काम नहीं करते। किसी का भला-बुरा नहीं करते। तुम भी किसी का भला नहीं कर सकते हो, मात्र मान्यता करते हो। तुम तुम्हारे शरीर में आनेवाले रोग को ही नहीं मिटा सकते तो अन्य का तो कर ही कहाँ सकते हो ?

प्रश्नः- रोग तो डॉक्टर मिटाता है न ?

पूज्य गुरुदेव श्रीः- अरे! क्या डॉक्टर रोग मिटाता है! डॉक्टर स्वयं को ही रोग या मरण से नहीं बचा सकता। देह की स्थिति जिस समय जिस क्षेत्र में जैसी होनी होती है; वैसी होती है होती है और होती ही है। इन्द्र ऊपर से उसे बदलने के लिए आवे तो भी बदल नहीं सकता।

यहाँ तो कहते हैं कि आरामगृह तो भगवान आत्मा है। सिद्धभगवान महासुखसागर में विश्राम करते हैं। देखो! पहले सिद्धभगवान को याद किया है, स्वयं को सिद्ध होना है न! प्रभु आप तो नीचे पधारते नहीं, परन्तु हम तो आपका स्मरण करके नीचे उतारते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी गाथा में प्रथम सिद्धों को नमस्कार करते हैं।

क्रमशः

शुद्धात्मा का ध्यान ही धर्म, और उसकी पात्रता का वर्णन

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन का अंश)

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की पहिचान तो प्रथम होती है, किन्तु यहाँ उस बारदान की बात गौण है, यहाँ तो उसका भी लक्ष छुड़ाकर अपने अभेद चैतन्यमात्र स्वभाव की श्रद्धा करने की बात है, क्योंकि वही अनंतकाल में नहीं किया है। अनंतबार भगवान की दिव्यध्वनि सुनी किन्तु अपने आत्मा की ओर उन्मुख नहीं हुआ, इसलिए कल्याण नहीं हुआ। इसलिए पराश्रय छुड़ाकर स्वाश्रय करने के लिए श्री आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव ! इस एक ध्रुव चैतन्यस्वभाव के अतिरिक्त समस्त परद्रव्यों का आलम्बन आत्मा को अशुद्धता का कारण है - ऐसा तू जान और उन समस्त परद्रव्यों का अवलम्बन छोड़कर अपने शुद्ध आत्मस्वभाव का ही अवलम्बन कर। प्रथम श्रद्धा में उसका आलम्बन करने से सम्यग्दर्शन होता है और तत्पश्चात् स्थिरतारूप से उसका आलम्बन करने से सम्यक्चारित्र होता है। इसके अतिरिक्त तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि का आलम्बन भी तेरे आत्मा को मलिनता का कारण है। ध्रुव आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परद्रव्य के सन्मुख देखने से विकार होता है - ऐसा जानकर जो जीव अपने श्रद्धा-ज्ञान को चैतन्यस्वभाव में एकाग्र करता है, उसका मोह क्षय हो जाता है। चैतन्य पर श्रद्धा रखना ही मोहक्षय का मार्ग है।

इसप्रकार जितने वर्तमान में ध्रुव परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा की, वह विशुद्ध आत्मा हुआ। अभी केवलज्ञान नहीं हुआ है, किन्तु सम्यग्दर्शन हुआ है, वहीं उसे विशुद्ध आत्मा कहा है। उस विशुद्ध आत्मा को अपने अनंतशक्तिवाले चिन्मात्र परम आत्मा का एकाग्र संचेतन लक्षण ध्यान होता है। ऐसा चैतन्यपरमात्मा का ध्यान ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपाय है।

आत्मा का त्रिकाल ध्रुव चैतन्यस्वभाव है और उस स्वभाव को

बतलानेवाले सच्चे देव-गुरु-शास्त्र जगत में त्रिकाल जयवन्त वर्तते हैं, किन्तु वे मुझ से पर हैं, इसलिए उनके लक्ष से भी मेरा कल्याण नहीं होता। प्रथम तो जहाँ तक सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहिचानकर न माने, तबतक स्वभाव की ओर उन्मुख नहीं हो सकता और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानने पर भी यदि स्वभाव की ओर उन्मुख न हो तो भी कल्याण नहीं होता।

आत्मा के अतिरिक्त जो परद्रव्य हैं, उनके लक्ष से, उनके अवलम्बन से पर्याय में विकार होता है और ध्रुव चैतन्य के आलम्बन से ही शुद्धता होती है, इसप्रकार जो स्पष्टरूप से स्व-पर का विभाग न बतलावें, वे तो परलक्ष छोड़कर स्वभाव का ध्यान करना नहीं बतला सकते, इसलिए वे तो सब झूठे देव, झूठे गुरु और झूठे शास्त्र हैं। जगत में आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य हैं और आत्मा को परद्रव्य के लक्ष से विकार भी है - इसे जो न माने, उसको परलक्ष से छूटकर स्वलक्ष करना नहीं रहता। परवस्तु हैं और उसके लक्ष से विकार भी अपनी पर्याय में होता है - ऐसा माने तो परलक्ष से छूटकर स्वलक्ष की ओर ढल सकता है। जगत में परद्रव्य हैं—ऐसा मनायें; पर के ऊपर जीव का लक्ष जाता है और जीव अपनी भूल से पर्याय में विकार करता है - ऐसा मनायें तथा उस विकाररहित ध्रुव चैतन्यस्वभाव त्रिकाल है, उसे भी मनायें और पराश्रय छोड़कर उस ध्रुव स्वभाव का ध्यान करना बतलावें, वे ही सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हैं। परन्तु वे झूठे देव-गुरु-शास्त्र अथवा यह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र - दोनों इस आत्मा को परद्रव्य हैं, उनके लक्ष से आत्मा अशुद्ध होता है और उन दोनों से भिन्न अपना चैतन्यस्वभाव ध्रुव है, उसके लक्ष से ही शुद्धता होती है - ऐसा निश्चित करके जो ध्रुव चैतन्य आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-लीनता करे, वह आत्मा विशुद्ध होता है। ध्रुव चैतन्यस्वभाव तो त्रिकाल शुद्ध है ही और उसके अवलम्बन से श्रद्धा-ज्ञान करने से पर्याय में भी वह आत्मा विशुद्ध होता है। स्वज्ञेय से च्युत होकर परज्ञेय में रुकने से विकार की उत्पत्ति होती है और चैतन्य की शुद्धता का घात होता है। अपने निर्विकारी ध्रुव चैतन्यतत्त्व को ही स्वज्ञेय करके उसके

अवलम्बन से एकाग्र होऊँ तो आत्मा को शुद्धता का लाभ होता है – ऐसा समझ कर जो परम शुद्ध आत्मा को ध्याता है, उसके मोह का क्षय होता है।

पर से लाभ-हानि मानना या शरीर को आत्मा मानना अथवा विकार से धर्म मानना, वह बहिरात्मपना है। परम शुद्ध आत्मा की श्रद्धा से जीव उस बहिरात्मपने को (अधर्मीपने को) टालकर अंतरात्मा (धर्मी) होता है और इसप्रकार अंतरात्मा होकर तत्पश्चात् पूर्ण परमात्मदशा प्रगट करने के लिए भी उस परम शुद्ध आत्मा को ही ध्याता है। इस शुद्ध आत्मा का ध्यान ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वही मोक्षमार्ग है, वही धर्म है, वही शुद्ध उपयोग है। धर्म के जितने प्रकार कहो, वे सब उसमें आ जाते हैं।

मेरा चैतन्यतत्त्व परलक्ष से होनेवाले विकार जितना नहीं है, किन्तु स्थायी ध्रुव है, ऐसी जो श्रद्धा करे, वह आत्मा का ध्यान कर सकता है, क्योंकि उसने पर को तुच्छ (अशरण) जाना; इसलिए उसमें एकाग्रता करना नहीं रहा। अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व को ही ध्रुव महिमामय शरणरूप जाना, इसलिए उसमें ही एकाग्र होना रहा। शुद्ध चिदानन्द आत्मा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता – यह तीनों आत्मा के ध्यानस्वरूप ही हैं। जगत में स्व और पर भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं, उनमें से स्वभावोन्मुख होने जैसा है, परोन्मुख होने से लाभ नहीं है – ऐसा जिसने निश्चित किया हो, वही चैतन्य का ध्यान कर सकता है।

मैं शुद्ध चैतन्य कारणपरमात्मा हूँ, उसी में से मेरी पूर्ण निर्मल कार्यपरमात्मदशा प्रगट होना है। ऐसा मेरी निर्मलदशारूपी कार्य का कारण है। इसके अतिरिक्त कोई शुभभाव या निमित्तादि परपदार्थ मेरी निर्मलदशा का कारण नहीं हैं। क्षणिक शुभ-अशुभभाव होते हैं, तथापि ऐसे स्वभाव का निर्णय करना चाहिए, स्वभाव के निर्णय का बल विकार को तोड़ देता है। निचली साधकदशा में भक्ति-पूजा-प्रभावनादि के भाव हों, व्रतादि भाव हों, किन्तु साधक जीव उस शुभराग को धर्म का कारण नहीं मानते। साधक की श्रद्धा में ध्रुव चैतन्यस्वभाव का ही अवलम्बन है, वह कभी भी नहीं

हटता, श्रद्धा में ध्रुव चैतन्यस्वभाव आया है, वह कभी नहीं भूलता। मुनि को छठवें गुणस्थान में महाव्रतादि के शुभभाव आते हैं, किन्तु वह धर्म नहीं है, ध्रुव चैतन्यस्वभाव में एकाग्रता ही धर्म है। मुनियों को सहज वस्त्ररहित निर्ग्रन्थ निर्दोष दशा होती है और अंतर में निज परम शुद्ध आत्मा को ही श्रद्धा-ज्ञान में लेकर ध्याते हैं। चौथे गुणस्थानवाले धर्मात्मा को भी किसी समय श्रद्धा में से परम शुद्ध आत्मा का ध्यान नहीं टलता, श्रद्धा द्वारा वह सदैव पर्याय-पर्याय में परम शुद्ध आत्मा को ध्याता है, इसलिए वह 'विशुद्ध आत्मा' हुआ है। ऐसा विशुद्ध आत्मपना चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होता है, उसे 'जिनेश्वर का लघु नंदन' कहा जाता है।

अहो, आत्मा के शुद्धस्वभाव की अत्यंत महिमावाली बात जीवों ने यथार्थरूप से कभी नहीं सुनी। आजकल चैतन्यतत्त्व की महिमा की सच्ची बात सुनने को मिलना भी अति दुर्लभ हो गया है। जो जीव अत्यन्त जिज्ञासु और योग्य होकर आत्मस्वभाव की यह बात सुने, उसका कल्याण हो सकता है।

आत्मा की अवस्था में पराश्रय से जो विकार होता है, उस विकार से परवस्तुएँ पृथक् हैं, इसलिए परवस्तुएँ आत्मा को विकार नहीं कराती। जीव स्वयं स्वोन्मुखता छोड़कर परोन्मुखता द्वारा उन्हें विकार का निमित्त बनाये है तो वे विकार का निमित्त होती हैं और जीव स्वयं स्वलक्ष में रहकर विकार न करे तो वे परवस्तुएँ जीव के ज्ञान का ज्ञेय होती हैं, इसप्रकार प्रथम तो पर से आत्मा का भेदज्ञान करना चाहिए। आत्मा की अवस्था में क्षणिक विकार होता है, वह पराश्रय करने से ही होता है, इसलिए जहाँ पर से अत्यंत पृथक्त्व निश्चित किया, वहाँ विकार से पृथक्त्व का निर्णय भी उसमें आ ही गया। ध्रुव चैतन्यस्वभाव के सन्मुख होते ही पर से और विकार से भेदज्ञान हो गया। भले ही अवस्था में व्यवहार हो-राग हो-निमित्त हो, किन्तु उन किसी से मेरा धर्म नहीं होता, मेरा धर्म तो ध्रुव चैतन्य के आश्रय से ही होता है - ऐसा धर्मी का निर्णय है। शुद्ध आत्मा की श्रद्धा ज्ञान करने से पर में और

विकार में एकताबुद्धि दूर हो जाती है। पर में एकताबुद्धि थी, तब स्वभाव में एकतारूप परिणमन (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) नहीं होता था और जहाँ स्वभाव में एकतारूप परिणमन हुआ, वहाँ पर में एकताबुद्धिरूप परिणमन दूर हो गया। जीव जिससे अपने को लाभ मानता है, उसका आलम्बन और उसमें एकताबुद्धि नहीं छोड़ता। अज्ञानी जीव शुभराग से और निमित्त से लाभ मानता है, इससे वह उसी में एकताबुद्धि नहीं छोड़ता, इसलिए मिथ्यादृष्टि रहता है। धर्मी जीव राग और निमित्त को जानता है, किन्तु उससे अपने को लाभ नहीं मानता, इसलिए उसमें एकताबुद्धि नहीं करता, किन्तु ध्रुव चैतन्यस्वभाव के आधार से ही लाभ मानता है, इसलिए उसी में एकताबुद्धि है और जहाँ एकताबुद्धि हुई है, वहीं ध्रुव चैतन्यस्वभाव में ही बारम्बार लक्ष को एकाग्र किये बिना नहीं रहता और वह किसी पर से या विभाव से लाभ नहीं मानता, इसलिए पर में से और विकार में से एकाग्रता हटे बिना नहीं रहती – ऐसे धर्मी जीवों को परम निजस्वभाव का ध्यान होता है और उस ध्यान के बल से उनका मोह नष्ट हो जाता है। वे धर्मी साकार हों या अनाकार (अणगार) हों – दोनों को चैतन्य के ध्यान से मोह का क्षय हो जाता है।

श्री आचार्यदेव ने ध्रुवस्वभाव के आश्रय से मोह के क्षय की ही बात कही है। अभेद शुद्धस्वभाव की ओर ढलने से मिथ्यात्व की दृढ़ गांठ छूट जाती है। इस पंचमकाल के जीवों को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता, इसकी आचार्यदेव को खबर है, तथापि आचार्यदेव अपनी दृढ़ प्रतीति के बल से अप्रतिहतभाव से मोहक्षय की ही बात करते हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व से भी जिस मिथ्यात्व का अभाव हुआ, वह फिर कभी नहीं होना है, क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने तक बीच में श्रद्धा में भंग नहीं पड़ना है, इसलिए क्षयोपशम सम्यक्त्व होने पर भी हम मोह का क्षय ही देखते हैं – ऐसा श्री आचार्यदेव के भाव में बल है। यही मोहक्षय का उपाय है।

— आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-7, अंक-10, माघ 2478

प्रेरक-प्रसंग

अपरिग्रह वृत्ति

जैनदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान पण्डित सदासुखदासजी जयपुर में निवास करते थे। जैनदर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थ-लेखन में उन्हें विशेष अभिरुचि थी। वे जयपुर नरेश सवाई रामसिंहजी के शासन काल में राज्य के कोषाध्यक्ष भी थे।

एक दिन की बात है किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने राजा के पास यह शिकायत की कि 'पण्डित सदासुखदास ठीक तरह से कार्य नहीं कर रहे हैं। जब देखो, तब धार्मिक ग्रन्थ ही पढ़ते रहते हैं। इससे अपने राज्य को लाभ के बजाय हानि होती है और राज्य का सारा हिसाब-किताब अस्त-व्यस्त हो गया है।' राजा रामसिंहजी को पण्डितजी की विद्वत्ता पर गर्व था, पर राज्य के कार्य के प्रति उनकी ढिलाई उन्हें जरा भी पसन्द नहीं थी। एक दिन दोपहर के समय बिना कोई पूर्व सूचना दिये वे कोषालय गये। एकाएक राजा को देखकर कोषालय के कर्मचारी घबरा गये। सबने उठकर राजा का अभिवादन किया। राजा रामसिंहजी ने तो आते ही पण्डित सदासुखदासजी के बही-खाते और रजिस्टर देखने प्रारम्भ किये। आदि से अन्त तक सभी बही-खाते राजा ने देखे, परन्तु कहीं भी उन्हें जरा-सी भूल नजर नहीं आई। पण्डितजी का इतना सुन्दर, स्वच्छ एवं व्यवस्थित कार्य देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'पण्डितजी! आपके कार्य से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आज से आपको पहले से दुगुना वेतन दिया जाएगा।'

राजा की बात सुनकर पण्डितजी घबराते हुए बोले—'राजन्! आपकी बात तो ठीक है, पर एक निवेदन है।' 'वह क्या है? हम आपकी बात पर अवश्य विचार करेंगे?' पण्डितजी ने कहा—'राजन्! अब से मैं ग्रन्थ-लेखन का कार्य प्रारम्भ करनेवाला हूँ; अतः प्रतिदिन दो घण्टे विलम्ब से आ सकूँगा। कृपया मेरे पूर्व के परिश्रम में एक चौथाई की कटौती कर दी जाए।' पण्डितजी

का निवेदन सुनकर राजा सहित सभी लोग आश्चर्य में डूब गये। उन्होंने अपने जीवन में पहली बार ही ऐसा विचित्र निवेदन सुना था। भला ऐसा कौन व्यक्ति है, जो अपने पारिश्रमिक में यों कटौती करने का निवेदन करे।

महाराजा रामसिंहजी ने गद्‌गद् हो कहा—'पण्डितजी! आपका कहना ठीक है। कागज लाओ, मैं आपको आदेश लिख देता हूँ।' महाराजा ने कागज पर लिखा—'पण्डितजी को वर्तमान पारिश्रमिक से दुगुना पारिश्रमिक दिया जाये। साथ ही इन्हें इच्छानुसार कार्यालय में आने की सुविधा दी जाये।'

आदेश पढ़कर पण्डितजी अभिभूत हो गये। तब से वे एकाग्रता पूर्वक अपने ग्रन्थ-लेखन कार्य में लग गये। उन्होंने कई ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखीं एवं अन्य भी मौलिक साहित्य का सृजन किया।

शिक्षा - निश्चय ही प्रामाणिक व्यक्ति हर कहीं विश्वासपात्र और प्रशंसनीय बन जाता है तथा प्रामाणिकता का आदर्श उसे जीवन की विशिष्ट ऊँचाईयों तक पहुँचा देता है। साभार : बोध कथायें

वैराग्यसमाचार

बेलगाम (कर्नाटक) : श्री आण्णाराव कुंदप्पाजी का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आपका पूज्य आचार्य श्री कुन्दकुन्द की तपो एवं समाधिस्थ गुरु क्षेत्र कुंदाद्रि बेट का विकास तथा संवर्धन में आपका विशेष योगदान रहा है।

कोलकाता : श्रीमती शोभारानी जैन का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप श्री अशोक बजाज की धर्मपत्नी थीं।

बड़ा मलहरा : श्रीमती कुसुम फौजदार का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप सिद्धायतन के मंत्री श्री प्रद्युम्न फौजदार की माताजी थीं।

अशोकनगर : श्री अशोक मनोरिया का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप श्री प्रदीप मानोरिया एवं राजेन्द्र मनोरिया के भ्राता थे।

मुम्बई : डॉ. सुभाष चाँदीवाल का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री पद्मनंदिनाथ (प्रथम)

श्री दिगम्बर जैन आम्नाय में पद्मनंदि आचार्य नामक कई आचार्य हुए हैं। उनमें से 'जम्बूद्वीपपण्णति' के रचयिता भगवान आचार्य पद्मनंदि अपने में भिन्न ही है। पद्मनंदि आचार्यों के जीवन के सम्बन्ध जो कुछ लिखा जा रहा है, उनमें पद्मनंदि नामक आप प्रथम होने से आपको आचार्य पद्मनंदि (प्रथम) बताया गया है।

आपने स्वयं को भगवान आचार्य वीरनन्दि का प्रशिष्य व आचार्य बलनन्दि का शिष्य बताया है। आपने विजयगुरु के पास ग्रंथों का अध्ययन किया अर्थात् आचार्य श्री विजयगुरु आपके विद्यागुरु थे। ऐसा भी बताया जाता है, कि 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' के रचयिता भगवान प्रभाचन्द्राचार्य (चतुर्थ) के आप दीक्षागुरु थे।

परन्तु आपके व प्रभाचन्द्र (चतुर्थ) के समय को देखते ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मनन्दिजी को आचार्य पदवी प्राप्त होने के पूर्व ही मुनि अवस्था में आपने आचार्य प्रभाचन्द्रजी को दीक्षा दी हो।

'जम्बूद्वीपपण्णति' लिखने का निमित्त बताते हुए लिखा है, कि 'राग–द्वेष से रहित श्रुतसागर के पारगामी आचार्यदेव माघनन्दी हुए। उनके शिष्य सिद्धान्त–महासमुद्र में कलुषता को धो डालनेवाले गुणवान आचार्य सकलचन्द्र गुरु हुए। उनके शिष्य निर्मल रत्नत्रय के धारक श्री नन्दिगुरु हुए। उन्हीं के निमित्त यह 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' लिखी गई है। गुरुपरम्परा के सन्दर्भ में आपने स्वयं को त्रिण्डरहित, त्रयशल्यविशुद्ध, गारवत्रय से रहित, सिद्धान्त के पारगामी व तप–नियम–योग से संयुक्त पद्मनन्दि मुनि बताया है।

आपकी ग्रन्थ रचना से ज्ञात होता है, कि आप प्राकृतभाषा व सिद्धान्तग्रंथों के पारगामी थे। आपने स्वयं को 'वरपउमनन्दि' कहा है। इससे स्पष्ट है कि स्वयं अन्य पद्मनन्दि से बिल्कुल भिन्न है।

जम्बूद्वीपपण्णत्ति ग्रन्थ रचना का स्थान वारानगर बताया है। जिसका राजा नरोत्तमशक्ति भूपाल जो सम्यग्दृष्टि व कलाओं में कुशल व दानशील

था। यह नगर जिनभवनों से विभूषित, सम्यग्दृष्टियों, मुनिजनों से मण्डित (अर्थात् मुनिपुंगव वहाँ आते–जाते रहते थे) व अत्यन्त रमणीय था।

'जम्बूद्वीपपण्णत्ति', 'प्राकृतपंचसंग्रहवृत्ति' व 'धम्मपसायण' नामक ग्रन्थ की रचनाएँ आपने की थी, ऐसा इतिहासकारों का मानना हैं।

आप करीब ई. स. 977 से 1043 के आचार्य थे। ऐसा विद्वानों का मानना है।

'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' ग्रन्थ के रचयिता आचार्य पद्मनन्दिनाथ (प्रथम) को कोटि कोटि वन्दन।

भगवान आचार्यदेव
श्री जयसेन (षष्ठम्)

श्री दिगम्बर जिनधर्म में भगवान 'आचार्य जयसेन' नामक कई आचार्य हुए हैं। आचार्य जयसेन (षष्ठम्) आचार्य भावसेन के शिष्य थे; व आप ब्रह्मसेन के गुरु थे। आप लाडवागढ़ संघ के आचार्य थे, क्योंकि आचार्य वीरसेनजी के गुरु आचार्य आर्यनन्दि का समय ई.स. 770–827 माना जाता है व आप उनके पश्चात् के आचार्य हैं। कहीं–कहीं ऐसा भी आता है, कि आप आचार्य धर्मसेन के शिष्य शान्तिषेण, आचार्य शान्तिषेण के शिष्य गोपसेन, उनके शिष्य आचार्य भावसेन तथा उनके शिष्य ये आचार्य भावसेन तथा उनके शिष्य ये आचार्य जयसेनजी हुए हैं। आपने अयपने वंश को योगीन्द्रवंश कहा है।

आचार्य अमृतचन्द्रदेव का पुरुषार्थसिद्धिउपाय व आचार्य सोमदेवजी का उपासकाध्ययन का आपने, अपने ग्रंथ में भरपूर उपयोग किया है। आपके ग्रंथ में, आचार्य रामसेन कृत 'तत्त्वानुशासन' का भी एक श्लोक आया है। आपने 'धर्मरत्नाकर' की रचना ई. सन् 998 में की थी। इससे प्रतीत होता है कि आप आचार्य रामसेन के सम–समयवर्ती रहे होंगे।

यह रचना 'तत्त्वज्ञान' से भरपूर है, जैसा इस रचना का नाम है, उसी भांति इसमें 'धर्म के रत्नों का समुद्र' ही न हो– ऐसा प्रतीत होता है।

आपका ग्रंथ धर्मरत्नाकर ई.स. 998 में हुआ होने से व आचार्य रामसेनजी के सम–समयवर्ती होने से आप ईसुकी 10वीं–11वीं शताब्दी के आचार्य होंगे।

आचार्य श्री जयसेन जी (षष्ठम्) को कोटि कोटि वंदन!

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जैसे– कुत्ता लकड़ी मारने वाले को तो देखता नहीं और लकड़ी से द्वेष करता है

उसीप्रकार– अज्ञानी परजीवों के प्रति राग–द्वेष करता है, परन्तु संयोग अपने पूर्व कर्म के अनुसार मिलते है – इस बात को नहीं देखता।

जैसे– नौकर अपने स्वामी के कहने पर किसी सेठ का अपमान कर आये तो दोषी नौकर नहीं स्वामी है।

उसीप्रकार– जीव को कर्म के उदय अनुसार पदार्थ मिलते है उन पदार्थ को इष्ट–अनिष्ट मानना मूढ़ता है।

जिस प्रकार– यह जीव मति ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मूर्त वस्तुओं को जानता है।

उसी प्रकार– चक्षु दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से मूर्त वस्तुओ को देखता है।

जिसप्रकार– यह जीव श्रुत ज्ञानावरण के क्षयोपशम से श्रुत द्वारा द्रव्य श्रुत में कहे गये मूर्त–अर्मूत समस्त वस्तुओं को परोक्ष रूप से जानता है।

उसी प्रकार– यह जीव अचक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम से स्पर्शन रसना, घ्राण और कर्ण द्वारा उस– उसके योग्य विषयों को देखता है।

जिस प्रकार– यह जीव अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से शुद्ध प्रद्गल पर्यन्त मूर्त द्रव्य को जानता है।

उसी प्रकार– यह जीव अवधि दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से समस्त मूर्त पदार्थों को जानता है

जैसे – ग्वालिन जब दही से मक्खन निकालती है तो जब एक हाथ की रस्सी को खींचती है तो दूसरे हाथ की रस्सी को ढ़ीला कर देती है और जब दूसरे हाथ की रस्सी को खींचती है तो पहले हाथ को ढ़ीला करती है तब मक्खन निकलता है अर्थात ग्वालिन का प्रयोजन सिद्ध होता है।

उसी प्रकार– आत्मा को समझने के लिए जब द्रव्यार्थिकनय से वर्णन होता है तो पर्यायार्थिकनय को गोण करते है और जब पर्यायार्थिनय से वर्णन होता तो द्रव्यार्थिकनय को गौण करते है तो आत्मा का पूर्ण स्वरूप समझ में आ जाता है। इसी प्रकार जब निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान –चारित्र का स्वरूप बताया जाता है तो व्यवहार सम्यग्दर्शन–ज्ञान चारित्र को गौण करते है और जब व्यवहार धर्म का वर्णन करते है तो निश्चय धर्म गौण रहता है साधक अवस्था में निश्चय मोक्षमार्ग के पीछे व्यवहार चलता है, लक्ष्य की प्राप्ति होने पर व्यवहार छुट जाता है।

जैसे– भस्म से ढ़ँके हुए अंगारे के अन्दर प्रकाश–तेज है।

उसी पकार– चांडाल की देह से ढ़का हुआ वह आत्मा अन्दर सम्यग्दर्शन के दिव्यगुण से प्रकाशित हो रहा है।

क्रमशः

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

एक निवेदन

सद्धर्मप्रेमी बन्धुवर,
सादर जय–जिनेन्द्र!

पूज्य गुरुदेवश्री ने सभी ग्रन्थों (चारों अनुयोग) का दोहन करके, मुमुक्षुओं के हितार्थ, निरंतर 45 वर्षों तक अपनी अमृतमयी वाणी, प्रवाहित की है। गुरुदेवश्री ने पूरे वस्तुस्वरूप एवं चारों अनुयोगों की विषयवस्तु के साथ ही 'पंच–परमेष्ठी' भगवंतों की महिमा बताई है। पूज्य गुरुदेवश्री निरंतर स्वयं निर्ग्रन्थ दीक्षा लेने की भावना भाते थे और अपने हर प्रवचन में उन्होंने, दिगम्बर मुनिराजों के गीत बारंबार गाये हैं। मुनिराजों के स्वरूप का वर्णन करते हुए, उनकी आंखों में आंसू भी आ जाते थे।

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई एवं **तीर्थधाम मङ्गलायतन,** अलीगढ़ ने अपनी सहयोगी संस्थाओं को साथ लेकर, एक बड़ा संकल्प किया है और वो यह कि पूज्य गुरुदेवश्री के उपलब्ध न्यूनाधिक दस हजार प्रवचनों में, जिसमें चारों ही अनुयोग समाहित हैं व उनके हिन्दी एवं गुजराती के शब्दशः प्रवचनों में मुनि–भगवंतों के सम्बन्ध में, जो उनके उद्‌गार व्यक्त हुए हैं, उन उद्‌गारों को एक सुनियोजितरूप में प्रकाशित करके, एक ग्रन्थ बनाया जाए। इस महायज्ञ में पूरे विश्व के मुमुक्षुओं की आहूति पड़े – यह हमारी भावना है। यह आहूति इस रूप में भी हो सकती है कि आप उनके ग्रन्थों और प्रवचनों का स्वाध्याय करके, जहां–जिस प्रवचन में, पूज्य गुरुदेवश्री ने मुनि–भगवंतों, आचार्यों व उपाध्यायों का वर्णन करते हुए, जो 'अहो भाव!' प्रदर्शित किये हैं, उन्हें रेखांकित करें।

हम आपको एक स्प्रेडशीट भेज रहे हैं, उसके अनुसार, उस पुस्तक का नाम अथवा ऑडियो का विवरण कि यह किस ग्रन्थ से है ? ग्रन्थ से लिया है तो, गुजराती या हिन्दी की किस पुस्तक से लिया है ? प्रवचन नं., गाथा नं., पृष्ठ सं., पैराग्राफ के साथ जो उद्‌गार आपको अच्छे लगें, उन उद्‌गारों को स्प्रेडशीट पर लिखकर, हमें भेजें। इसके अतिरिक्त आप इस कार्य को उक्त क्रम में लिखकर, ईमेल, डाक या दिए गए व्हाट्सएप पर भी फोटो भी भेज सकते हैं।

यदि आपने पांच, दस, बीस, तीस गाथाओं का दो माह में भी स्वाध्याय किया, अर्थात् आधा प्रवचन प्रतिदिन भी सुना अथवा पढ़ा, तो हमारा लक्ष्य, दो महीने में पूरा हो जाएगा। इस कार्य में, हमारे लगभग 400 पूर्व मंगलार्थी भी जुड़े हुए हैं। देश की करीब 15 शिक्षण संस्थाएं हैं, उनके छात्र भी जुड़े हुए हैं। देश के सभी प्रमुख विद्वान, इसमें शामिल हैं। हमारा आप सभी से यह निवेदन है कि आप सभी इस अभूतपूर्व कार्य में जुड़ जाएं। आपके पास, अगले दो–तीन दिन में स्प्रेडशीट पहुंच जाएगी। इसके साथ–साथ, किसी भी शंका–समाधान हेतु, आपको फोन नंबरों की एक सूची भी उपलब्ध करायी जाएगी। किसी से संपर्क करने में संकोच मत कीजिए। इस कार्य का बीड़ा उठाइए। यह कार्य पूरा करना है और जल्द से जल्द पूरा करना है। हमें फरवरी तक यह पुस्तक प्रकाशित कर समाज को भेंट कर देनी है।

हमें विश्वास है कि आप जिनधर्म प्रभावना के इस महायज्ञ में अपनी आहूति अवश्य अर्पण करेंगे।

सादर,

पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलिया
प्रधान सम्पादक

पण्डित अशोक लुहाड़िया,
प्रबन्ध संपादक

मंगलार्थी ऋषभ जैन, मङ्गलायतन

मंगलार्थी सौधर्म लुहाड़िया, मङ्गलायतन

समाचार-दर्शन

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय का
दसवाँ वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ के तत्त्वावधान में दो दिवसीय दसवाँ वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम की शुरुआत शोभायात्रा, ध्वजारोहण, पूजन प्रक्षाल विधान, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सीडी प्रवचन तत्पश्चात् डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का दोपहर में धवला वाचना तत्पश्चात् मंगलायतन विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. कृष्णा एवं समस्त विश्वविद्यालय स्टाफ के आह्वान पर श्री पवन जैन का मंगलमय उद्‌बोधन वर्तमान जीवन को जोड़ते हुए मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार से हुआ।

प्रथम दिन सायंकाल भक्ति पश्चात् आधुनिक युग में जैनदर्शन की उपयोगिता विषय पर सेमिनार हुई। जिसकी अध्यक्षता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर द्वारा की गयी। जिसके वक्ता प्रो. वीरसागर जैन, दिल्ली; प्रो. दयानन्द भार्गव, जयपुर; डॉ. पंकज जैन, टेक्सास; डॉ. प्रेम सुमन, उदयपुर थे। तत्पश्चात् पंच कल्याणक की स्मृति के रूप में इन्द्रसभा एवं राजसभा का आयोजन पण्डित अभयकुमार जैन, देवलाली; पण्डित ऋषभ जैन, छिन्दवाड़ा; डॉ. विवेक जैन, छिन्दवाड़ा के माध्यम से सम्पन्न हुआ।

द्वितीय दिन पूजन विधान भक्ति, दोपहर में धवला वाचना बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन जयपुर द्वारा, स्वाध्याय सायंकालीन भक्ति के पश्चात् द्वितीय दिन का सेमिनार जिसकी अध्यक्षता प्रो. ए.डी शर्मा, सागर विश्वविद्यालय ने की। जिसके वक्ता डॉ. प्रियदर्शना जैन, मद्रास; प्रो. अनेकान्त जैन, दिल्ली; प्रो. (डॉ.) जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय; प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन, जोधपुर; प्रो. (डॉ.) सुदीप जैन ने उपसंहारात्मक वक्तव्य प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् एक अपूर्व नाटिका युगपुरुष (ऋषभदेव) का युगप्रवर्तन। सम्पूर्ण कार्यक्रम की ऑन लाईन प्रस्तुति को हजारों लोगों ने सराहा एवं आगे भी इसी प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करने की भावना व्यक्त की।

सहयोगी मंगलार्थी मयंक जैन, सौधर्म जैन, माईकल यादव, संदीप लोखण्डे, आदि एवं मंगलायतन विश्वविद्यालय स्टाफ का सराहनीय योगदान रहा।

कहान समयसार सम्प्राप्ति शताब्दी वर्ष घोषित

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को समयसार परमागम प्राप्त होने के उपलक्ष्य में वर्ष 2021-2022 को **कहान समयसार सम्प्राप्ति वर्ष** के रूप में सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर द्वारा देश-विदेश की मुमुक्षु संस्थाओं के तत्त्वावधान में मनाया जा रहा है। इसके अन्तर्गत वर्ष भर अनेक संगोष्ठी, परिचर्चा, प्रवचनमाला, विधान आदि का आयोजन किया जाएगा। अभी प्रतिदिन समयसार की मूल गाथाओं के आधार से समयसार परिचर्चा देश के सुप्रसिद्ध विद्वानों की उपस्थिति में तीर्थधाम ज्ञानायतन के तत्त्वावधान में संचालित हो रही है। ट्रस्ट द्वारा समयसार की 415 गाथाओं को कण्ठस्थ करनेवालों के लिए 5100/- सम्मान राशि से पुरस्कृत करने की योजना भी संचालित हो रही है। इसी के अन्तर्गत ढाई द्वीप जिनायतन इन्दौर में आयोजित श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान के दौरान तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने समयसार वर्ष के पोस्टर का विमोचन किया। संस्कार तीर्थ शाश्वत् धाम, उदयपुर के सहयोग से प्रकाशित यह पोस्टर देश की समस्त संस्थाओं को प्रेषित किया जा रहा है। इस पोस्टर में समयसार के प्रणेता आचार्य कुन्दकुन्द, ग्रन्थाधिराज समयसार एवं पूज्य गुरुदेवश्री के चित्र प्रदर्शित किए गए हैं। सभी से अनुरोध है कि इन पोस्टर्स को मंदिर, स्वाध्यायभवन इत्यादि में लगायें।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार, प्रथम श्रुत स्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है।

विद्वत् समागम - विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री का लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर - 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी की 300वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर, श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित **'जन्म-जयन्ती वार्षिक महोत्सव'** विशाल ज्ञानयज्ञ में **श्री कुन्दकुन्द-कहान-पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई** एवं **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़** द्वारा ग्रन्थकर्ता के चरणों में

भावभीनी आहूति

'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ सेट

संक्षिप्त परिचय

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के त्रिशताब्दी जन्मजयन्ती के पावन अवसर पर, उनकी अनुपम कृति **'मोक्षमार्गप्रकाशक',** उसी के आधार पर **'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव'** में समागत सारभूत दृष्टान्तों एवं सिद्धान्तों पर आधारित कृति प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। नवीन पाठकों को मूल ग्रन्थ के अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है।

मोक्षमार्गप्रकाशक – तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा द्वितीय बार आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुन: मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी – प्रस्तुत प्रश्नोत्तरमाला में प्रत्येक अधिकार के आधार पर हैडिंग के अनुसार प्रश्नोत्तर का विभाजन किया गया है। जहाँ-जहाँ विषयवस्तु की दृष्टि से गरिष्ठता लगी, वहाँ उन विषयों को विशेष स्पष्ट किया गया है।

मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्त वैभव – जिनागम में गहन सिद्धान्तों को सहज हृदयग्राह्य बनाने के पावन उद्देश्य से, सुगम दृष्टान्तों की परम्परा रही है। इन्हीं दृष्टान्त-सिद्धान्त के माध्यम से पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने जनसामान्य को जिनागम के गूढ़ सिद्धान्त सरल रीति से समझाये हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्तपूर्वक जिनागम के आधारभूत सिद्धान्तों को चित्रित करके कृति को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

'मोक्षमार्गप्रकाशक', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव' का सेट

मँगाने का फार्म

नाम.....

.....

पता .....

.....

..... पिन कोड .....

संस्था / मन्दिर का नाम .....

.....

संस्था / मन्दिर के प्रमुख का नाम .....

.....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

आप, हमारे ग्रन्थमाला के सम्माननीय सदस्य हैं / नहीं .....

प्रतियों की संख्या .....

नोट - ग्रन्थ की उपलब्धता के अनुसार ही आपको भेंट किए जाएँगे। आप अपना फार्म भरकर ईमेल कर देवें।

हस्ताक्षर

. . . . . .

ग्रन्थ मँगाने का पता—

प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के

दसवें वार्षिकोत्सव की झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

स्वर्णिम अवसर—

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं पास कर चुके छात्रों के लिए सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है।

कोरियर द्वारा - **तीर्थधाम मङ्गलायतन**
(प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com;
website : www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com